पुस्तकालय के मायने

हृदय कांत दीवान

जब मैं स्कूल में पढ़ता था तो घर में कई तरह की किताबें, पत्रिकाएं व अख़बार आते रहते थे। घर में हम सभी पुस्तकें पढ़ते थे। मुझे याद नहीं कि जब मैं बहुत छोटा था तो मेरे स्कूल में पुस्तकालय था या नहीं। किन्तु पांचवीं कक्षा में व उसके बाद मैं जिस–जिस स्कूल में गया वहां पुस्तकालय था। यह ज़रूर है कि इनमें से प्रत्येक में वैसा प्रयास नहीं था जैसा कि मेरी पांचवींवाले स्कूल में था। इस स्कूल में हम सब लोगों को पुस्तकालय जाना होता था। पुस्तकालय से हम पुस्तक ले जा भी सकते थे और वहां बैठकर पढ़ भी सकते थे। अलमारियां खुली रहती थीं, हम चाहे जो किताब ले सकते थे। कोई बन्धन नहीं, कोई ताला नहीं। मुझे मालूम नहीं कि क्या पुस्तकालय व पुस्तकों को इससे नुकसान होता था अथवा नहीं, लेकिन मुझे बहुत फ़ायदा हुआ। मेरे दोस्तों, मेरी कक्षा के बच्चों व अन्य जिन्हें मैं जानता था उनमें से किसी ने भी कभी पुस्तक फाड़ने या कोई सुन्दर चित्र काटने का प्रयास नहीं किया। पुस्तक ले जाने का प्रयास शायद कभी किसी ने किया था, ऐसा हमने उड़ते–उड़ते सुना। किन्तु वह मसला हल हो गया और किसी आलमारी पर ताला नहीं लगा। हम सब को कभी पता नहीं लगा कि वह कौन था और कौन–सी पुस्तक ले जाने का प्रयास कर रहा था। हमारे लिए तो लाइब्रेरी में सब कुछ वैसा ही था। हो सकता है, सतर्कता बढ़ा दी गई हो। किन्तु हमें ऐसा दिखता नहीं था।

यह कहानी मैं क्यों सुना रहा हूं? यह इसलिए सुना रहा हूं कि लाइब्रेरी से जो जुड़ाव हमारा उस समय बना, उसने मेरे साथियों और मुझमें किताबों का रस डाल दिया। पुस्तकें ढूंढ़ने, संभालने व इस्तेमाल करने की तैयारी करवा दी और उन्हें उलट–पलट कर देखने की हिम्मत दे दी। यह इसलिए ज़रूरी था क्योंकि अपने–आप पढ़ने के लिए, स्वतंत्र रूप से सीखने के लिए पुस्तकों को खंगालपाना आवश्यक है। स्कूल हमें ज्ञान को स्वयं खंगालने व उसके आधार पर आगे सीखते रहने के लिए तैयार कर सकता है। ज्ञान खंगालने के अलावा एक और बात मैं रखना चाहूंगा। उस उम्र में मुझे कहानी का बहुत शौक़ था। शायद सभी बच्चों को यह शौक होता है। पुस्तकालय होने से मैंने अलग–अलग तरह की कहानियां पढ़ीं और धीरे–धीरे संपूर्ण पुस्तक जिसमें मात्र एक ही कहानी को भी पढ़ने लगा था। मुझे इसमें बहुत मज़ा आता था। पुस्तक हिन्दी की हो या अंग्रेज़ी की, इससे कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता था। क्योंकि मैंने दोनों तरह की पुस्तकें पढ़ना सीख लिया था। फिर गर्मियों की छुट्टियों में पुस्तकालय ढूंढ़ना और ढूंढ़कर उस पर आक्रमण करना एक महत्त्वपूर्ण व रोचक कार्य होता था। एक तरह की पुस्तकें ख़त्म होने पर दूसरी पुस्तकों तक पहुंचना और बच्चों के साथ उन पर चर्चा करके नए लेखकों, नई तरह की पुस्तकें पहचानना, यह सब करना होता था। कब छुट्टियां निकल गईं पता नहीं लगता था। और यह भी याद नहीं रहता था कि कितनी पुस्तकें पढ़ डालीं।

लाइब्रेरी की पुस्तक पढ़ना और दस कहानियों को पढ़ना, पाठ्यपुस्तक पढ़ने से बहुत अलग होता था। कक्षा दस और ग्यारह में जब हम विषयों के बारे में पुस्तकें ढूंढ़ते थे और अलग–अलग पुस्तकालयों में जाते थे तो भी वह कार्य स्कूल द्वारा निर्धारित पुस्तक पढ़ने से बहुत अलग होता था। स्वयं पढ़ने में स्वतंत्रता का अहसास था। हर व्यक्ति अपनी तरह से पुस्तक पढ़ सकता था। उसे पुस्तक का कौन–सा हिस्सा पढ़ना है और कौन–सा बिल्कुल नहीं, कौन–सा सरसरी तौर पर आदि सभी बातें सोचने की ज़रूरत नहीं

होती थी। जब जैसा चाहा, जितना चाहा पढ़ लिया। सिर्फ़ वही नहीं पढ़ा जो पाठ्यक्रम में निर्धारित है, और भी कुछ पढ़ा, कुछ और चीज़ें जानीं। यह सब करने में मज़ा आता था क्योंकि यह पता था कि कोई यह नहीं पूछेगा कि किसी अध्याय में सोहन ने कौन से रंग की पतलून पहनी हुई थी, या फिर सोहन को जो टैक्सी ड्राइवर मिला उसका क्या नाम था? आदि ....। जब डर ही नहीं था कि कोई यह पूछ लेगा कि तुमने इस कहानी में क्या सीखा। यह तो सही है कि हर कहानी में कुछ न कुछ ज़रूर सीखते हैं। किन्तु यह ज़रूरी नहीं कि सब एक कहानी से एक ही बात सीखें। मैं अपने लिए कोई निहितार्थ बताऊंगा और आप अपने लिए। मुझे कुछ और पसंद होगा आपको कुछ और। और इसके लिए कारण भी अलग–अलग होंगे।

कुल मिलाकर पुस्तकालय आपको पढ़ने की, जानने की, सोचने की, अपना मत बनाने की स्वतंत्रता देता है। वह आपको, आपके दायरे की सीमा व अन्य बन्धनों से मुक्त होने का रास्ता दिखाता है। वह आपकी पढ़ने में रुचि बढ़ाता है। आपको अन्य लोगों के अनुभव व समझ को समझने और उसकी समालोचना करने का मौक़ा देता है। यदि पुस्तकालय यह सब करने की गुंजाइश देता है तो फिर हर स्कूल में और हर कक्षा के बच्चे को पुस्तकालय उपलब्ध होना क्यों अनिवार्य नहीं होना चाहिए। क्या ऐसा हो सकता है कि पुस्तकों तक बच्चे सहज रूप से पहुंच सकें और वे भी ऐसी पुस्तकें जो सुन्दर व मज़ेदार हों? इसकी राह में क्या बाधाएं हैं? इनसे कैसे निजात पा सकते हैं?

यह शायद आज से 25 साल से ज़्यादा पहले की बात है जब हर उच्च प्राथमिक स्कूल के बच्चों के लिए किताबों का एक सेट उपलब्ध करवाया गया था। यह सेट छांटकर, चुनकर ली गई किताबों का था। बहुत से स्कूलों में ये सेट देर–सबेर पहुंच भी गए। किन्तु इनका उपयोग कहीं नहीं हुआ। कुछ प्रधान शिक्षकों ने उन्हें घर रख लिया। कुछ ने इन्हें आलमारी में दबाकर रख दिया ताकि बच्चे किताबें फाड़ न दें। तो कुछ ने इन्हें अलमारी में सजा दिया। ऐसा कोई उदाहरण नहीं मिला जिसमें बच्चों को इनका उपयोग करने का खुलकर मौक़ा मिला हो। उन्हें शायद यह तो मंज़ूर था कि पड़े–पड़े इन्हें दीमक खा जाए किन्तु यह नहीं कि वे बच्चों के हाथ पहुंच जाए और उनसे वे फटे। मुझे लगता है इसमें कहीं न कहीं यह भी भावना रही होगी कि बच्चे पाठ्यपुस्तक तो पढ़ते नहीं और वे यह किताबें क्या पढ़ेंगे। या फिर यह भी किताबों से इनका क्या लेना–देना, इन्हें कौन–सा आगे चलकर ज्ञानी बनना है। एक महत्त्वपूर्ण पहलू जो इस सब के पीछे है, वह है हमारा किताबों से क्या रिश्ता है? और हम अपना और अन्य का किस प्रकार का रिश्ता चाहते हैं? मुझे लगता है कि यह प्रश्न पुस्तकालयों के होने, बने रहने व उनके उपयोग को सबसे अधिक प्रभावित करता है।

मेरे विचार से स्कूल में बच्चों तक पुस्तकें पहुंचने में बहुत बाधाएं हैं। पहली बाधा है कि इसका पैसा कहां से आएगा। दूसरी, यह पहुंचेगी कैसे, तीसरी, इनको रखा कहां जाएगा, चौथी, इनको बच्चों को कब देंगे, पांचवी, इन्हें संभालेंगे कैसे? कौन करेगा यह सब? बच्चे क्या इन्हें पढ़ पाएंगे? आदि प्रमुख बाधाएं है।

इन सब बाधाओं के पीछे असली बाधा तो यह है कि हमारी पुस्तकालय के बारे में एक सामूहिक समझ नहीं है कि पुस्तकालय के क्या–क्या लाभ हो सकते हैं और कैसे वे शिक्षण के कार्य को नए मायने दे सकते हैं और वास्तव में उसे सरल बना सकते हैं। यह सोचना कठिन नहीं है कि स्कूल में पुस्तकालय का हम किस–किस तरह से उपयोग कर सकते हैं और इसका उपयोग बच्चों के विकास व सीखने के लिए क्यों आवश्यक है? इस पर ढेरों विचार हैं और अनुभव है। किन्तु इस प्रश्न पर व्यापक फोरम पर शिक्षकों के साथ व पालकों के साथ चर्चा करने की आवश्यकता है। फिर पुस्तकालय उपलब्ध करवाने और उसके सटीक व निर्धारित उपयोग और खुले उपयोग दोनों के बारे में सोचने व साझा समझ बनाने की ज़रूरत है। यह समझ बनने के बाद आगे के द्वार स्वयं खुल जाएंगे।

हृदय कांत दीवान : विद्या भवन सोसायटी, उदयपुर में शैक्षिक सलाहकार हैं।